वैदिक साहित्य में वास्तुकला की झलकें

Minakshi Singh

Department of Ancient Indian History, Culture & Archeology, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

The importance of the Vedic Literature cannot be minimized as it is a mine of Indian culture. Though we are well versed about the -art and Architecture of Indians civilization, But no archaeological evidences of the art and Architecture of vedic age are available to us. There fore. in the present paper we propose to discuss the data architectural data culled from the Vedic Literature.

Several names for the house are mentioned in the Vedic Literature, such as Dama, Griha, Pastya, Sadana.Durona, and Harmya. It consists of three parts: (i) The door with its fore court (Dvara); (ii) Sadas which is identical to the As Thana mandapa, Sabha and Asthayika of the leter literature. Probably it was the made apartment or the room for receiving guests etc (iii) Patni-Sadana, afemale apartment (antahpure).

We come to know from the Atharvaveda (9.3.19) that a house was regularly planned mid measured. It is intersting to note than there are references of the big and small houses. The Rigveda refers to a house on a thousand pillars (sahsva- sthuna) adorned with gold in lay on a sheeting of copper. We come to across about the Sabha and Sa miii, which was probably a thousand pillared hail. The worlds Pakkha. Kutaya were respectively well and room. The Sata- sukta of the Atharvaveda provides the several references about the construction of the houses.

The roof, an important part of the building, was made by the thatch which was based on the pillars of the bamboos. The architectural features have been discussed Moreover, the architecture of the buildings for the residence of the domestic animals is also an interesting feature of the traper.

Thus it is misnomer to suggest that the specific details about the lay out and architecture of the vedic people are very little.

भारतीय आवासीय व्यवस्था के प्रमाण नवपाषाण काल से मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। सैन्धवकालीन हड़प्पा और मोहन जोदड़ो नामक दोनों राजधानियाँ श्रेष्ठ नगर विन्यास की उदाहरण है। यहाँ के वास्तुविद्या के आचार्यों ने दुर्ग के रूप में उनका विधान किया। उनके पुर विन्यास में परिखा, प्राकार, वप्र, द्वार, अट्टालक, महापथ, प्रासाद, कोष्ठागार, सभा, चत्वर, वीथी, जलाशय आदि वास्तु के अनेक अंग प्राप्त हुए हैं।[१] यद्यपि वैदिककालीन वास्तुकला की समुचित जानकारी उत्खनन से अभी तक प्राप्त नहीं हो पायी है, परन्तु वैदिक साहित्य से वास्तुकला सम्बन्धी रोचक सामग्री प्राप्त होती है। अतः प्रस्तुत लेख में इसकी विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि इस युग में गृहनिर्माण कला का अच्छा विकास हुआ था। वैदिक संहिताओं में आवासीय व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राम, पुर, गृह और अनेक गृह वाची पद् प्राप्त होते हैं। निघण्टु में २२ गृहपर्याय का उल्लेख है, परन्तु वेदों में उससे कहीं अधिक शब्द गृह या आवास के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'ऋग्वेद' की संहिता में ही लगभग तीस शब्दों को एतदर्थ में माना जा सकता है- गृहम्, गयः, पस्त्यम्, दुरोणम्, दुर्गः, दमः, दग्, ओकः, योनिः, शर्मन्, सदनम्, वसतिः, छदिस्, वर्तिः, वेश्यन्, वरूथम्, शरणम्, वास्तुः, शर्मन्, सदनम्, सदस्, हर्म्यम्, विदथम्, गुहा, अस्तम्, क्षयः, अमा, स्वसराणि, अज्मन् तथा छाया।[२] ये शब्द गृह के उद्देश्य, प्रकार और स्वरूप पर अलग-अलग दृष्टियों से प्रकाश डालते हैं। यह वैदिक ऋषियों की आवास संरचना पर उनके सूक्ष्म चिंतन का द्योतक है। 'वास्तु' शब्द निवासार्थक वस् से तुण् प्रत्यय द्वारा उत्पन्न हुआ है और

Vinana Bharati

ऋग्वेद में क्षे के क्रियापद के साथ इसका प्रयोग हुआ है।[३] इसी का 'पति' के साथ समस्त पद 'वास्तोष्पति'[४] ऋग्वेद और अर्थवेद में वास्तु के अधिपति देवता का नाम है।[५]

गृह निर्माण:

अर्थवेद में कहा गया है कि गृह या शाला की सोंच सबसे पहले देवों ने की। तभी उसे देव-निर्मित[६] और परमेष्ठी प्रजापति द्वारा रचित[७] कहा गया है। अथर्ववेद के अनुसार शाला 'मान की पत्नी' है, इसका अभिप्राय है कि यह गृहस्थी के लिए प्रतिष्ठा या सम्मान का स्थान है।[८] सातवलेकर का आग्रह है कि 'गृह निर्माण करने की विद्या जानने वाले' को मानपति कहते हैं। वह घर के प्रमाण से योजना (नक्शा) तैयार करता है और उसी प्रमाण से भूमि पर रचना करता है। यह मानपति द्वारा निर्मित हुआ है, अत: इसा शाला को 'मानपत्नी' कहते हैं। इसका शब्दार्थ है प्रमाण दर्शाने में जो कुशल कारीगर है, उसके प्रमाण से इसकी पालना हुई है।[९] अथर्ववेद के अनुसार पृथ्वी पर माप लेकर निर्माण किए जाने के कारण इस शाला को 'मिता' कहा गया है।[१०]

वैदिक साहित्य के अनुसार अच्छा निवास स्थान वह है जो उत्तम प्रकार से सुरक्षित (सुप्रावी:क्षय:) तथा लम्बी अवधि तक टिकने (दीर्घश्रुत शर्म) वाला हो। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में ऋषि वशिष्ठ के एक विशाल, सुन्दर तथा स्थायी निवास का उल्लेख है। उन्होंने आकांक्षा की कि "मैं बड़े परिमाण और सहस्त्र द्वारों वाले घर में जाना चाहता हूँ, मैं मिट्टी के घर में नहीं रहना चाहता हूँ[११]" वास्तव में 'मृण्मयं गृहम्' तथा 'सहस्त्रद्वारं गृहम्' का भेद वैदिक वास्तु विज्ञान का प्रेरक तत्त्व है।[१२]

वैदिक मनीषियों ने वास्तुकला की दृष्टि से गृहनिर्माण के मूलतत्त्वों को भी ध्यान में रखा जा। अथर्ववेद में इसका संकेत प्राप्त होता है। यह उल्लेख किया गया है कि 'इस शाला के निर्माण में सविता, वायु, इन्द्र तथा बृहस्पति देव सहायता करें। मरूत्गण इसमें उदक और घी देने में सहायक हों और राजा इसमें कृषि बढ़ाने में सहायता करें[१३]।' अत: ऐसा प्रतीत होता है कि शाला निर्माण से पहले जिन देवताओं की सहायता मांगी गयी है, उसके स्वरूप की समीक्षा से ज्ञात होता है कि निवास स्थान में सूर्य प्रकाश, स्वच्छ वायु, विशद जल और बौद्धिक प्रसाधन के अलावा उसमें रहने वालों के लिए आवश्यक योग्य पदार्थ और सन्तोषजनक आजीविका का साधन भी परम अनिवार्य समझे गये।[१४]

जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि वैदिक साहित्य में गृह के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जेसे दम, पस्त्या, सदन, दुरोण, हर्म्य, अस्त, शरण आदि। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, उसके तीन भाग होते थे। पहला भाग सम्मुख प्रांगण (आँगन) या अजिर अजिर समेत गृहद्वार था। दूसरा भाग सदस् या बैठक थी जिसे सभा और शब्द में आस्थानमण्डप भी कहा गया है। यह राजप्रासादों का वह भाग था जिसमें दरबार और अतिथि स्वागत भी किया जाता था। घर का तीसरा भाग पत्नी सदन कहलाता था, उसी की संज्ञा अन्त:पुर हुयी। घर का चौथा भाग अग्नि शाला थी जहाँ श्रौत अग्नियों का आधान किया जाता था, इसे अग्निशरण भी कहते थे। कालान्तर के राजप्रासादों में यही देवगृह कहा जाने लगा।[१५]

वैदिक कालीन व्यवस्था के अनुसार, घन निर्माण से पहले उसका विन्यास या मापन किया जाता था। उसके लिए निमित या मित शब्द का प्रयोग किया गया। गृह निर्माण की मूलभूत विशेषता सम्यक विभाजन थी। घर में दो, चार, छ:, आठ पक्ष या चौक बनाये जा सकते हैं।[१६] अन्दर रहने वाले मनुष्यों की संख्या के अनुसार तथा उस घर में होने वाले कार्यों के अनुसार घर छोटे या बड़े कई प्रकार के होते थे।[१७] बड़े घर को वृहत्मान कहा गया है।[१८] इसकी अपेक्षा छोटे घरों को शाला कहते थे जो मध्यम श्रेणी का घर होता था।[१९]

वैदिक वाङ्मय में घर निर्माण के लिए स्तम्भ, छप्पर, छत, द्वार, बाँस आदि का उल्लेख हुआ है। वास्तुकला सम्बन्धी अनेक शब्द उल्लेखनीय हैं- जैसे घरों की छत आदि टेकने के खम्भे को स्कम्भ कहते थे। ऋग्वेद में इन्द्र को स्कभीयान् अर्थात् सर्वोत्तम खम्भे का स्वामी कहा गया है।[२०] गृह के विभिन्न भाग खम्भे पर टिकते थे- स्कम्भेन धारयेत्[२१]। भवन के आधारभूत स्तम्भों के लिए 'स्थूणा' तथा 'उपमित्' शब्दों का प्रयोग हुआ है[२२]। बाँस को सम्बोधित किया गया है कि 'तुम सीधेपन से अपने आधारभूत स्थूणा पर चढ़।[२३]' सम्भवत: इसका अभिप्राय सीधे स्तम्भ पर सीधे बाँस रखने का है। अथर्ववेद के एक सूक्त[२४] में शालानिर्माण में प्रयुक्त होने वाले स्तम्भ ऐसे बलवान हों जेसे हथिनी के पाँव होते हैं, क्योंकि इन्हीं पर

Vijana Bharati

घर का छप्पर रहता है। स्तम्भ तथा स्तम्भों के सभी जोड़ों को अच्छे प्रकार से मजबूत किए जाने का उल्लेख है[२५]। वैदिक साहित्य में सहस्रस्थूण वाले घरों का उल्लेख है[२६]। निःसंदेह यह महाप्रासादों को इंगित करता है। इस विषय पर वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है कि 'इन महाप्रासादों के सभामण्डप में उसी प्रकार के सहस्रस्थूण लगाए जाते थे जैसे मध्यकाल में मदुरा एवं चिदम्बरम के सभामण्डपों में सुप्रतिष्ठित किए गये थे। सहस्रस्थूण वाले इस प्रसाद भाग को सदस कहा गया है जिससे सूचित होता है कि वह आस्थानमण्डप ही था[२७]।' वैदिक युग में सभा और समिति जैसी राजनीतिक प्रतिनिधि संस्थाओं का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। सम्भवतः समिति में समस्त जनता या विश का अधिवेशन होता था जिसमें कई सहस्र जनसंख्या एकत्र होती थी। सम्भवतः उसी के लिए सहस्रस्थूणों वाले सभाकक्ष या सदन का निर्माण किया जाता था[२८]।

वैदिक साहित्य में दुर् तथा द्वार् शब्दों का प्रयोग गृह के लिए मिलता है। सहस्रद्वार वाले विशाल घरों को वृहत्मान कहा गया है[२९]। छोटे घरों को शतभुजी अर्थात् १०० खम्भों वाला और शतद्वार कहा गया है[३०]। ऐसा सभागार परवर्ती एतिहासिक युग में भी मिला है। बिहार प्रान्त से कुमराहान के उत्खनन से मौर्ययुगीन ८० खम्भों वाले मण्डप के अवशेष मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युगीन शतभुजी सदन की परम्परा मौर्य युग में भी बनी रही। वासुदेव शरण अग्रवाल का अभिमत है कि अन्तर इतना ही है कि ये खम्भे मौर्यकालीन चमकीले पत्थर के हैं जिनकी छत सम्भवतः काष्ठशिल्प की थी[३१]। वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि खम्भे या स्तम्भ लकड़ी के बनते थे, क्योंकि एक स्थान पर सुनहली चमक के अयः स्थूण या ताँबे की पतली चादर के खोल चढ़े हुए लकड़ी के स्तम्भ का भी उल्लेख है जिस पर सुनहला काम किया गया था[३२]। भूमि या खण्ड को कोश कहते थे। अनेक खण्डों से निर्मित घरों का उल्लेख है। इस युग में दो मंजिला घर भी बनते थे। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि एक के ऊपर दूसरा मंजिल बनना चाहिए जैसे घोंसला एक पर दूसरा बनाते हैं और एक कोश पर दूसरा बनाते हैं। नीचे का स्थान मजबूत हो तभी ऊपर दूसरा सध सकता है[३३]।

वास्तुकला की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि बड़े घरों का निर्माण काष्ठ शिल्प द्वारा होता था। ऋग्वेद के एक स्थल से ज्ञात होता है कि बढ़ई या काष्ठकर्म के शिल्पी वनों में जाकर ऊँचे वृक्षों की नाप लेते थे और स्वधिति या कुल्हाड़ी से उन्हें काटकर गिराते थे। उन्हें ही बड़े खम्भों का रूप दिया जाता था- वनस्पते स्वधिर्तवतितक्ष[३४]।

छतः

बड़ी छत वाली शाला को 'बृहच्छन्दाः' कहते थे[३५]। छदिस[३६] तथा छर्दिस[३७] शब्दों का प्रयोग आच्छादन से युक्त घर के लिए हुआ है। आच्छादन अथवा छत के लिए 'वंश' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। वास्तुकला की दृष्टि से छत निर्माण का गहन अध्ययन वासुदेव शरण अग्रवाल ने किया है[३८]। अनचिरे बाँसों के एक सिरे पर यून (जून) नामक मोटी रस्सी बाँधी जाती थी। इसी कारण पूरी छत को यूनबद्ध कहा जाता था। इन बाँसों को आड़े, तिरछे रखकर बहुत सी रस्सियों से कसा जाता था। अथर्ववेद में इसे वंशनहन कहा गया है[३९]। छत दो प्रकार से पाटी जाती थी, प्रथम प्रक्रिया में कोरे बाँसों का एक जाल बिछाया जाता था और इसके बाद चिरे बाँस के फट्टों से उसे ढंका जाता था। इसे आयाम कहा गया है जिसे आजकल ठाट या ठट्टर कहते हैं। दूसरे प्रकार में इस ठाट के ऊपर फूस की तहें बिछाई जाती थी जिसे अथर्ववेद में बर्हण कहा गया है[४०]। बिछायी गई फूस की तहों के ऊपर पुनः बाँस की खपच्चियों की एक तह लगाई जाती थी। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि बाँसों के ऊपर और नीचे की तहों को एक दूसरे के साथ मजबूत करने के लिए ***गठियाते थे***[४१]।

अथर्ववेद में ही फूस के घरों के बारे में दो शब्द प्राप्त होते हैं-प्रथम तृण (फूस) है[४२]। द्वितीय शब्द पलट है जो धान और गेहूँ के पौधों का पयार था। इसके मुट्ठे भी छप्पर छाने के काम में आते थे- तृणैरावृता पलदान् वसाना[४४]। घरों की छतें एक पलिया तथा दुपलिया होती थीं। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित 'उभयतश्छदि'[४५] का अर्थ दुपलिया छत से लिया गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इसके बीचो बीच लगा हुआ मोटा मंगरा (बलदण्ड) परिमित अथवा विषुवत् कहा गया है। सम्भवतः दुपलिया छत के बीच का विषुवत् दण्ड और दोनों पार्श्वों के मोटे बल्ले भी स्थूणा या भूनियों पर रोके जाते थे[४६]।

Vijnana Bharati

अग्रवाल की धारणा है कि विषुवत के ऊपर आकाश की ओर बहुत सी हंड़िया ठोंक दी जाती थीं। ऐसा इसलिए किया जाता था कि धुँवा निकल सके। वैदिक कालीन बड़े घरों की सहस्त्र ओपश विशेषता बतायी गई है। इसका अर्थ मंगरे के ऊपर हजार नेत्रों की उठी हुई पंक्ति माना गया है[४७]। बौद्ध साहित्य में ओपश को स्तूपिका या थूपी कहा गया है[४८]। जो चैत्यों की ढोलाकार छत के ऊपरी भाग की विशेषता थी। अथर्ववेद[४९] से ज्ञात 'ओपशं विततं सहस्त्राक्षं विषूवति' की ओर ध्यान आकशित करते हुए कहा गया है कि इस अवतरण के चारों शब्द पारिभाषिक हैं और 'विषूवति' या मध्य के बलदण्ड के ऊपर हजार नेत्रों या छेदों वाले ओपश या स्तूपिकाओं की पंक्ति का स्पष्ट वर्णन करते हैं[५०]। अथर्ववेद के एक सूक्त में इसके स्वरूप की उपमा खड़ी हुई अलंकृत हथिनी से दी गयी है- 'हस्तिनी पद्वतीमिता पृथिव्याँ तिष्ठति'[५१]। इससे दो तथ्यों की जानकारी मिलती है- प्रथम तो घर की छत हथिनी की पीठ की भाँति ढोलाकार होती थी तथा दूसरे वैदिक युगीन काष्ठशिल्प वाले घरों में निश्चित रूप से यह विशेषता और प्रस्फुटित हो गई होगी[५२]।

वैदिक युग में वास्तुकला की दृष्टि से गृह निर्माण में मनुष्यों के साथ पशु और अग्नि को भी महत्व दिया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि मनुष्यों के साथ पशु और अग्नि भी रहेंगे-'अग्नियन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह।[५३]' कहा गया है कि, चौड़े प्रांगण या अजिर में जो घर के सामने था, जिसे प्रथम कक्ष भी कहते थे, गायों और घोड़ों के रखने का स्थान बनया जाता था- 'गोभ्यो अश्वेभ्यो नमोयच्छालायां विजायते।[५४]'

गृह निर्माण में यह भी ध्यान में रखा जाता था कि घर का प्रवेशद्वार किस दिशा में हो? शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि देवताओं को पूरब-पश्चिम का विन्यास अधिक रूचिकर था और मनुष्यों के घरों में उत्तर-दक्षिण का विन्यास अधिक रूचिकर था- प्राचीनवंश हविर्धानमेतद्वै देवानां निष्केवल्यं यद्धविधनिं.....उदीची वें मनुष्याणां दिक् तस्माद् उदीचीन वंशं सदो भवति[५५]। शतपथ ब्राह्मण में प्रापत सासग्री के आधार पर यह कहा गया है कि सामने के हिस्से में आगे पीदे प्रायः चार कोठे होते थे। घर के पिछले भाग में पत्नीसदन या अन्तःपुर का निर्माण होता था। प्रवेशद्वार के बाद सदस या पुरुषों की बैठक थी[५६]। शशि तिवारी ने समीचीन ढंग से ऋग्वेदीय सूक्त ७.५५ की समीक्षा करते हुए भवन की योगना पर प्रकाश डाला है[५७]। इसमें प्राप्त आठ ऋचाओं के आधार पर हर्म्य या भवन का चित्र उभरता है?

(भवन स्थापत्य के अलावा शतपथ ब्राह्मण से सम्भवतः मन्दिर स्थापत्य के सम्बन्धी साक्ष्य को प्रस्तुत करने का एक प्रयास पाश्चात्य विद्वान सिम्पसन ने किया है। इस ग्रन्थ में स्तभ तथा छप्पर युक्त मन्दिर की जानकारी मिलती है, मिलती है, जिसकी दीवारें चटाई की थीं[५८]। यदि इस सुझाव को हम स्वीकार कर लें तो ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक मन्दिर वास्तुकला ने परवर्ती युगीन मन्दिरों की वास्तुकला को प्रेरित किया था, क्योंकि द्वितीय शताब्दी ई.पू. के औदुम्बर सिक्कों पर अंकित में स्तम्भों पर आधारित ढोलाकार छत के अंकन मिलते हैं[५९] (चित्र२)।

उपर्युक्त विवेचना से जहाँ वैदिक साहित्य वास्तुकला में काष्ठशिल्प की रोचक सामग्री प्राप्त होती है वहीं गृह निर्माण कला के मूल तत्त्व विद्यमान हैं।)

सन्दर्भ :

१. वास्तुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ. १८।

२. शशि तिवारी, वैदिक अध्ययन, पृ.२००।

३. वास्त्वधि क्षितः। ऋग्वेद, ८.२५.५ शशि तिवारी द्वारा उद्धत, वही, पृ. २०६ पादटिप्पणी१

४. ऋग्वेद, ७.५४.।-३; ७.५५.१

५. शशि तिवारी, वही, पृ. २००।

६. देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे, अथर्ववेद, ३.१२.५

७. प्रजायै चक्रेत्वाशाले परमेष्ठी प्रजापतिः; उपर्युक्त, ९.३.११

८. अथर्ववेद, ९.३.११- मानस्य पत्नि शरणा स्योना; वही, ९.२.९ उंभौ मानस्य पत्नि.....।

९. सातवलेकर, ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, खण्ड ३, काण्ड ९, पृ. २६।

१०. अथर्ववेद ९.३.१६.१७-पृथिव्यां निमिता मिता।

११. ऋग्वेद, ७.७४.५- ध्रुवं यशश्छर्दिरस्यभ्यं नासत्या; अथर्ववेद, ३.१२.१-इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति।

१२. शशि तिवारी, वही. पृ. २०१

१३. अथर्व्रवेद, ३.१२.४- इमांशालां सविता वायुरिन्द्रो- बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन्। उक्षन्तूद्रा मरूतो धृतेन भगो-नो राजा निकृषिं तनोतु।।

Vijana Bharati

१४. तुलना कीजिए शशि तिवारी, वही, पृ. २०२

१५. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ. ५१

१६. अथर्ववेद, ९.३.२१- या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा-या निमीयते।अष्टापक्षां शालां मानस्यपत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये।

१७. शशि तिवारी, वही, पृ. २०३; वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ. ५१

१८. ऋग्वेद, ७.८८.५-बृहन्तं मानं वरूण स्वधावः।

१९. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही,

२०. उपर्युक्त; ऋग्वेद, १०.११.५।

२१. ऋग्वेद ८.४१.१०।

२२. उपर्युक्त, २.४.१५, ४.५.१, १.५९.१, ५.६२.६; अथर्ववेद, ३.१२.६, ९.३.१

२३. अथर्ववेद, ३.१२.६- ऋतेन स्थूणामधि रोह वंश।

२४. उपर्युक्त, ९.३.१७- मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती।

२५. उपर्युक्त, ९.३.१०- दृढ़ नद्धा परिष्कृता; ९.३.१- उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत।

२६. ऋग्वेद, १.४१.५; ५.६३.६.

२७. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही।

२८. उपर्युक्त

२९. ऋग्वेद, ७.८८.५

३०. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही.

३१. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही.

३२. उपर्युक्त, पृ. ५२।

३३. अथर्ववेद, ९.३.२०- कुलायेऽधिकुलायं कोशेकोशः समुब्जित।

३४. ऋग्वेद, ३.८.६; तुलना कीजिए वासुदेव शरण अग्रवाल, वही, पृ. ५१

३५. अथर्ववेद, बृहच्छन्दाः पूतिधान्या।

३६. निघण्टु, ३.४

३७. ऋग्वेद, ६.१५.३, ६.४६.९, ६.६७.२।

३८. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही. पृ. ५२।

३९. अथर्ववेद, ९.३.४- वंशानं नहनानां।

४०. उपर्युक्त, ९.३.३।

४१. उपर्युक्त, ९.३.२- ग्रन्थिश्चकार ते दृढ़ान।

४२. उपर्युक्त।

४३. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही।

४४. अथर्ववेद, ९.३.१७।

४५. शतपथ ब्राह्मण, ३.६.२२

४६. वायुदेव शरण अग्रवाल, वही. पृ. ५२-५३

४७. उपर्युक्त, पृ. ५३।

४८. उपर्युक्त।

४९. अथर्ववेद, ९.३.८।

५०. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही. पृ.५३।

५१. अथर्ववेद, ९.३.१७।

५२. तुलना कीजिए वासुदेव शरण अग्रवाल वही।

५३. अथर्ववेद, ९.३.१४।

५४. उपर्युक्त, ९.३.३।

५५. शतपथ ब्राह्मण, ३.६.१.२३।

५६. वासुदेव शरण अग्रवाल, वही. पृ. ५३-५४।

५७. शशि तिवारी, वही, पृ. २०४-२०५।

५८. देखिए सिम्पसन 'सम सजेशन्स आफ ओरिजिन इन इण्डियन आर्किटेक्चर' जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १८८८, पृ. ४९-७१: परन्तु कुमार स्वामी ने इस मन्दिर न मान कर यज्ञ शाला स्वीकार किया है, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेसियन आर्ट, पृ. ४२.

५९. एलन, ब्रिटिश म्युजियम कटालाग ऑफ एन्शियंट इण्डियन क्वायंस, फलक, १५,१ तथा २ (पृष्ठ भाग); कनिघंम, क्वायन्स ऑफ एन्शियंट इण्डिया, फलक, ४.२ (पृष्ठ भाग); देखिए भारतीय मुद्रा परिषद का अखिल भारतीय अधिवेशन, २००६, शांतिनिकेतन, में मीनाक्षी सिंह द्वारा प्रस्तुत शोध लेख, प्राचीन भारतीय सिक्कों पर अंकित सथापत्य कला के रोचक अंकन।

Vijnana Bharati